इस्लाम और मानव-अधिकार

सैयद जलालुद्दीन उमरी

ईश्वर के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।

दो शब्द

हम सब जानते हैं कि मानव-अधिकार (Human Rights) ज्वलन्त विषय (Burning Topic) है। इस पर विभिन्न पहलुओं रे सिलसिला जारी है। जहां कहीं इन अधिकारों का उल्लंघन होता है, उसके ख़िलाफ़ कभी-कभी नोटिस भी लिया जाता है और उसके सुधार की कोशिश भी होती है। ये सब बातें क़ाबिले-क़द्र हैं। मुझे इस विषय से एक लम्बे समय से दिलचस्पी रही है। इस सिलसिले में मेरी कुछ किताबें प्रकाशित भी हो चुकी हैं। उनमें 'ग़ैर मुस्लिमों से संबंध और उनके अधिकार' और 'मुसलमान औरतों के अधिकार और उनपर एतिराज़ों का जाइज़ा' शामिल हैं। एक और छोटी-सी किताब में मैंने बताया है कि ग़ैर इस्लामी देशों में मुसलमान किन अधिकारों की मांग करते हैं और कैसी ज़िन्दगी गुज़ारते हैं। यह किताब 'ग़ैर इस्लामी रियासत और मुसलमान' के नाम से छप चुकी है। मानव-एकता पर प्रकाशित एक किताब 'मानव-एकता और इस्लाम' पहले से ही मौजूद है। 'बच्चे और इस्लाम' के नाम से भी एक किताब छपती रही है। इसी तरह मेरी किताब इस्लाम में 'ख़िदमते-ख़ल्क का तसव्वुर' (इस्लाम में मानव-सेवा की अवधारणा) पहले निकली थी और अल्लाह का शुक्र है कि अब भी छप रही है। उनमें से ज़्यादातर किताबों की अंग्रेज़ी और दूसरी भाषाओं में अनुवाद भी मौजूद हैं।

इस्लाम ईश्वरीय धर्म (अल्लाह का दीन) है। मैंने अपनी उन किताबों में यह देखने की कोशिश की है कि इस महत्वपूर्ण विषय में, जिसका संबंध मनुष्य के अस्तित्व और उसकी सुरक्षा तथा उसकी भलाई और उसके चिरस्थायी कल्याण से है, इस्लाम की क्या शिक्षाएं हैं और इसने किस चीज़ पर बल दिया है ? ठीक इसी विषय पर मैंने हाल ही में एक किताब लिखी है, जिसका शीर्षक है– 'इस्लाम इंसान के हुक़ूक़ का पासबान' (इस्लाम मानव-अधिकारों का प्रहरी)। अभी कुछ दिन पहले मैंने इस विषय पर मर्कज़ जमाअत इस्लामी में इसी किताब की रौशनी में भाषण दिया था। इसी भाषण को दोबारा देखने और इसमें कुछ कमी-बेशी करने के बाद आपकी ख़िदमत में पेश किया जा रहा है। अल्लाह क़बूल फ़रमाए और कोताहियों को माफ़ करे।

जलालुद्दीन
7 नवम्बर, 2004 ई.

इस्लाम और मानव-अधिकार

मानव-अधिकार के बारे में यह बताने की कोशिश की जाती है कि इसका एहसास जैसे आज है, इससे पहले नहीं था और इंसानों की अधिकांश आबादी इससे वंचित थी और अत्याचार की चक्की में पिस रही थी। कभी कहीं से कोई आवाज़ उठती भी थी तो शक्तिशाली वर्गों की शक्ति के नीचे दबकर रह जाती थी। इसकी आज़ादी का सही अर्थों में एहसास पश्चिम को हुआ और पश्चिम ने ही इसका स्पष्ट विचार दिया। कहा जाता है कि फ़्रांस के सम्राट् अलफ़ान्सू नवम् ने यह क़ानून स्वीकृत किया या स्वीकृत कराया कि किसी को बिना किसी कारण के क़ैद नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, बिना किसी अपराध के किसी को क़ैद करने के काम को बिल्कुल ही अनुचित ठहराया गया। इसे मानव-अधिकार के इतिहास में बहुत बड़ा पहल समझा जाता है। फिर इसके बाद फ़्रास ही में रूसो पैदा हुआ। उसक़ी कि़ताब का और उसने इंसानी आज़ादी की जो अवधारणा दी, उसकी बड़ी चर्चा रही। उसने कहा कि इंसान प्राकृतिक रूप से आज़ाद है और उसे आज़ाद होना चाहिए। उस किताब का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुआ और बड़ी क्रान्तिकारी कि़ताब समझी गई। उर्दू भाषा में भी इसका अनुवाद मौजूद है। इस किताब के बाद फ़्रांस में एक तरह की हलचल पैदा हुई और मानव-अधिकारों का घोषणा-पत्र Declaration of Rights of Man शीर्षक से यह घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ, जिसमें मानव-अधिकारों का उल्लेख था। फिर उसके बाद १० दिसम्बर १९४८ ई. में राष्ट्रसंघ ने मानव-अधिकारों का अखिल विश्व घोषणा-पत्र (The Universal Declaration of Human Rights) प्रकाशित किया। इसे इस सिलसिले का बड़ा क्रान्तिकारी क़दम समझा जाता है और यह ख़्याल किया जाता है कि मानव-अधिकारों की बहुत ही स्पष्ट अवधारणा उसके अन्दर मौजूद है और इंसानों को ज़ुल्म और ज़्यादती से बचाने की कामयाब कोशिश की गई है।

उस घोषणा-पत्र में जिन बातों पर ज़ोर दिया गया है वे हैं– व्यक्ति की आज़ादी, न्याय और इंसाफ़ तथा समानता। क़ानून के विशेषज्ञों के निकट ये उस घोषणा-पत्र की मौलिक विशषताएं हैं और ये चीज़ें अगर इंसान को मिल जाएं तो उसके अधिकार सुरक्षित हो जाते हैं। उस घोषणा-पत्र में कुछ त्रुटियां भी हैं और व्यावहारिक रुकावट भी। एक यह कि यह घोषणा-पत्र स्वीकृत तो हो गया, लेकिन

इसके पीछे इसे लागू करनेवाली कोई शक्ति नहीं है। अगर कोई देश, विशेषकर कोई शक्तिशाली देश इसका उल्लंघन करता है तो उसे इसका पाबन्द बनाने का कोई ठोस और प्रभावकारी उपाय इसमें नहीं बताया गया है। इसका सबूत आप आज की दुनिया में देख सकते हैं। एक बड़ा देश अपनी ताक़त के घमंड में पूरी ढिठाई के साथ मानव-अधिकारों का उल्लंघन कर रहा है और कोई उसे रोकनेवाला नहीं है।

दूसरी बात यह है कि इसमें धार्मिक स्वतंत्रता को स्वीकार किया गया है, लेकिन इस स्वतंत्रता की, सही अर्थों में, सीमाएं निर्धारित नहीं की गई हैं। मान लीजिए कि अगर धार्मिक स्वतंत्रता की अवधारणा सिर्फ़ यह है कि आदमी पूजा-पाठ करे, इबादतघर (उपासना-गृह) में जाकर अल्लाह की इबादत करे, मस्जिद में नमाज़ पढ़ ले, चर्च में अपने धर्म के अनुसार इबादत कर ले, गुरुद्वारे में चला जाए या जिसकी जो इबादतगाह है उसमें पहुंच जाए और इबादत की रस्में पूरी कर ले तो यह भी एक आज़ादी है। इससे आगे कुछ ख़ास मामलों में आज़ादी देकर कहा जा सकता है कि यह धार्मिक स्वतंत्रता है। लेकिन इस्लाम के मामले में मुश्किल यह है कि इस्लाम पूरी ज़िन्दगी के बारे में हमें हिदायतें देता है और ऐसा कोई संविधान नहीं है जो कहे कि मुसलमानों को अपने धर्म के सभी आदेशों पर चलने की आज़ादी है। वे अपने दायरे में अपना क़ानून लागू कर सकते हैं।

तीसरी बात यह है कि पश्चिम में चर्च और पश्चिमवाले ने और उनके प्रभावाधीन शासक वर्ग ने इंसान के विचार और व्यवहार की आज़ादी और उसके मौलिक अधिकारों के बारे में बहुत ही ग़लत रवैया अपनाया, वास्तविक धर्म से कोई संबंध नहीं था। इसकी प्रक्रिया में मानव-अधिकारों की वर्तमान परिकल्पना अस्तित्व में आई। इसमें धर्म की वास्तविक भूमिका की बिल्कुल ही उपेक्षा कर दी गई है। अल्लाह के जो पैग़म्बर (ईश-दूत) आए, उनकी क्या शिक्षाएं हैं, उनको जब सत्ता मिली तो उनका क्या रवैया रहा है और मानवता किस तरह भलाई को प्राप्त कर सकी है? ये चीज़ें कभी बहस का विषय बनीं ही नहीं, जैसे यह तय कर लिया गया हो कि धर्म से हटकर या धर्म को नज़रअन्दाज़ करके बातचीत की जाएगी। स्पष्ट है कोई शख़्स यह नहीं कह सकता कि यह कोई वस्तुनिष्ठ या निरपेक्ष अध्ययन है, बल्कि सही बात यह है कि यह एक पक्षपातपूर्ण अध्ययन है, जिसमें पहले से तय कर लिया गया है कि धर्म की वास्तविक भूमिका बहस में नहीं आएगी, बल्कि इसे नज़रअन्दाज़ किया जाएगा।

यह एक सच्चाई है और इस्लाम इसे स्वीकार करता है कि इंसानों पर

ज़ुल्म-ज़्यादती होती रही है और आदम के पहले ही बेटे ने ज़ुल्म-ज़्यादती की थी। लेकिन इसके साथ वह यह भी कहता है कि अल्लाह के पैग़म्बर जिन उद्देश्यों को लेकर दुनिया में आते हैं उनमें से एक मूल उद्देश्य धरती पर न्याय और इंसाफ़ की स्थापना और ज़ुल्म और अत्याचार की समाप्ति है। ज़ाहिर है कि उस मक़सद को उन्होंने ने दुनिया में आम करने और फैलाने की कोशिश भी की और जब भी उन्हें सत्ता मिली तो न्याय और इंसाफ़ से दुनिया भर गई। जहां तक इस्लाम का संबंध है, इतिहास गवाह है कि एक लम्बी अवधि तक इसका शासन रहा है। इसके नागरिक क़ानून दुनिया के एक बड़े हिस्से पर लागू रहे हैं। उइन क़ानूनों का अध्ययन साफ़ बताता है कि ये क़ानून न्याय और इंसाफ़ की अपेक्षाएं हर पहलू से पूरे करते हैं और इनमें वे सभी अधिकार इंसान को दिए गए हैं, जिनका आज उल्लेख किया जाता है। लेकिन जब भी इस्लाम का ज़िक्र आता है तो एक तो सही अर्थों में इसकी भूमिका को स्वीकार नहीं किया जाता, दूसरे यह कहा जाता है कि सोचने-समझने और परखने का आज जो स्तर है या इंसान आज सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से जहां पहुंच चुका है और जो उसकी अपेक्षाएं हैं इस्लामी शिक्षाएं उससे निम्नतर श्रेणी की हैं। वे वर्तमान समय की अपेक्षाओं (तक़ाज़ों) को पूरा नहीं करतीं और न्याय और इंसाफ़ का जो उच्चर स्तर होना चाहिए, इसने बहुत-से मामलों में वह स्तर क़ायम नहीं रखा है। एक बात यह भी कही जाती है कि यह कहना सही नहीं है कि इस्लाम इन अधिकारों की सुरक्षा करता है, क्योंकि इस्लाम ही के नाम पर ज़ुल्म और ज़्यादती और दहशतगर्दी (आतंकवादी कार्रवाई) हो रही है, लोगों का ख़ून बहाया जा रहा है और जो लोग यह काम कर रहे हैं, वे इस्लाम ही के हवाले से कर रहे हैं। फिर कैसे कहा जा सकता है कि इस्लाम न्याय और इंसाफ़ और मानव-अधिकारों का रक्षक है? सही बात यह है कि यदि कहीं सचमुच दहशतगर्दी पाई जाती है तो उसका इस्लाम से कोई संबंध नहीं है। इस्लाम मानव-अधिकारों का प्रहरी (पासबान) बनकर आया है। अगर कोई व्यक्ति या गिरोह उसे कुचल रहा है, तो उसे इस्लाम का प्रमाण-पत्र (सनद) या सर्मथन हरगिज़ प्राप्त नहीं होगा। इस्लाम ने इंसान को वे सभी अधिकार दिए हैं और उनकी सुरक्षा की भावना पैदा की है, जिनकी आज दुनिया में चर्चा है। और इनसे बहुत कठिन परिस्थितियों में ये अधिकार दिए हैं। क़ुरआन या हदीसों में इन अधिकारों का क़ानून की भाषा में वर्णन बहुत कम हुआ है। क़ानून की किताबों में जिस तरह क़ानून क्रमशः धाराओं के रूप में लिखे जाते हैं कि पहली धारा यह है, दूसरी धारा यह है और तीसरी धारा यह है। इस तरह क़ुरआन और हदीसों

में क़ानून का वर्णन नहीं हुआ है, बल्कि इसने अपनी शिक्षाओं के प्रसंग में इन क़ानूनों का हवाला दिया है कि इन परिस्थितियों में यह क़ानून है। इसने आम तौर किसी क़ानून का एक ही जगह ज़िक्र नहीं किया है, बल्कि इसके एक पहलू का एक जगह उल्लेख है तो दूसरे पहलू का दूसरी जगह, कुछ और पहलू पर तीसरी जगह चर्चा हुई है। इन सब को मिलाने से जो तस्वीर बनती है, वह महत्वपूर्ण है और फिर हदीसों में उसके विवरण मिलते हैं। इसके साथ ही इस्लामी क़ानून पर हमारे उलेमा (धार्मिक विद्वानों) और फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) ने बड़ा ज़बरदस्त काम किया है। उनके क़ानूनी और फ़िक़ही (धर्मशास्त्र-संबंधी) ज्ञान और विवेक को सही बात यह है कि कोई नादान ही चैलेंज कर सकता है। जिस सूक्ष्मता के साथ उन्होंने क़ानून का अध्ययन और शोध किया शायद दुनिया में इसका उदाहरण नहीं मिलता। एक-एक शब्द और इबारत के एक-एक पहलू पर उनके यहां जो डिस्कशन मौजूद हैं और जिस सूक्ष्मता से जाइज़ा लिया गया है, उससे क़ानूनों के निश्चित बिन्दु उभरकर सामने आते हैं और क़ानून की एक तस्वीर बनती है। इसी तस्वीर को समझने और समझाने की ज़रूरत है।

इस्लाम ने इंसान को जो अधिकार दिए हैं उनपर बात करने से पहले यह बात नज़र के सामने रहनी चाहिए कि इस ब्रह्माण्ड और मनुष्य के बारे में इसका एक विशेष दृष्टिकोण है। इसका मौलिक महत्व है। इसकी कुछ सैद्धान्तिक शिक्षाएं जिनसे यह किसी क़ीमत पर हटता नहीं है और इसका कोई क़ानून उन शिक्षाओं से टकराता नहीं है। अगर आप कोई क़ानून बनाएं या जारी करें तो आपको इस बात का ख़्याल रखना पड़ेगा कि वह उन मूल शिक्षाओं से नहीं टकराए। अगर वह उन मूल शिक्षाओं से टकराएगा, तो वह इस्लामी क़ानून नहीं होगा। मिसाल के तौर पर क़ुरआन कहता है कि इस दुनिया का बनानेवाला और मालिक अल्लाह है। हर चीज़ उसकी मिल्कियत है। यह इसकी एक मूल अवधारणा है। इस अवधारणा ने प्रत्येक अत्याचारी और अन्यायी के शासन की जड़ काट दी है और उसे बता दिया है कि तुम मालिक नहीं हो। मालिक तो अल्लाह है। अगर कोई व्यक्ति अल्लाह तआला को इस हैसियत से स्वीकार करता है तो यह नहीं कह सकता कि मेरे पास सत्ता है और मैं बादशाह हूं, मैं किसी बड़ी जायदाद और प्रॉपर्टी का मालिक हूं या लैंडलॉर्ड हूं या मेरी कोई और हैसियत है या मैं कोई उद्यमी हूं। इसलिए जो चाहे कर सकता हूं। जब अस्ल मालिक अल्लाह है तो इंसान उसकी मिल्कियत में उसकी मर्ज़ी ही के मुताबिक़ अधिकार कर सकता है या उसका प्रयोग कर सकता है। अल्लाह की दी हुई शक्ति और सामर्थ्य या साधनों को उसकी मर्ज़ी

के ख़िलाफ़ उसके बन्दों पर जुल्म और ज़्यादती के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकता एक और मिसाल लीजिए। वह कहता है कि ज़िन्दगी और मौत अल्लाह के हाथ में है। यह एक मौलिक अवधारणा है और जब तक अल्लाह चाहता है इंसान दुनिया में ज़िन्दा रहता है। कुछ बच्चे मां के पेट ही में मर जाते हैं, कोई पैदा होते ही मर जाता है, कोई जवान होकर मरता है, कोई बूढ़ा होकर मरता है। यह फ़ैसला करना कि यह आदमी इस दुनिया में कब तक ज़िन्दा रहेगा, यह अल्लाह का काम है। उससे ज़िन्दगी तुम नहीं छीन सकते और अगर ऐसा करोगे तो अल्लाह की सत्ता में तुम दख़ल दोगे और उसकी सज़ा पाओगे। इसी तरह वह कहता है कि इंसान सिर्फ़ खुदा का बन्दा बन जाए। यह कोई मामूली बात नहीं है। इसमें इस बात का एलान है कि इंसान पर हुकमत सिर्फ़ अल्लाह की है और किसी दूसरे को इसे गुलाम बनाने का हक़ नहीं है और हर हुकूमत को अल्लाह की सत्ता के अधीन होना चाहिए। इससे आज़ाद होकर किसी इंसान पर दूसरे इंसान की न राजनीतिक सत्ता जाइज़ है और न धार्मिक सत्ता। इसी तरह कुरआन कहता है कि इंसान सम्माननीय है। उसके सम्मान के बहुत-से पहलू हैं। उसे उसके मौलिक अधिकार से वंचित करना उसके सम्मान के ख़िलाफ़ है। अगर इंसान को अपमानित किया गया तो वह सम्माननीय नहीं रहा, अपमानित हुआ। कुरआन इसके विरुद्ध है इस तरह कुरआन ने कुछ मूल अवधारणाएं दी हैं। दुनिया के प्रत्येक संविधान में प्रस्तावना से संबंधित बातें होती हैं या निर्देशक सिद्धान्त होते हैं। इस्लाम की इन मूल अवधारणाओं को आप निर्देशक सिद्धान्त कह सकते हैं। इससे मानव-अधिकारों की एक सुनिश्चित अवधारणा उभर कर सामने आती है और इन्हें एक निश्चित दिशा मिलती है। इस्लाम के निकट क़ानून देने का अधिकार सिर्फ़ अल्लाह को है और इंसान उस क़ानून का पाबन्द है। हां, इंसान उसके द्वारा दिए गए क़ानून की रौशनी में परिस्थितियों के अनुकूल उसका नवीनीकरण (इज्तिहाद) कर सकता है। किसी को सर्वाधिकार-सम्पन्न शासक बनने की अनुमति नहीं है। अल्लाह के क़ानून के अन्तर्गत के बड़े से बड़ा शासक और शासित दोनों ज़िन्दगी गुज़ार सकते हैं। इस्लाम ने सिर्फ़ क़ानून ही नहीं दिया है, बल्कि वह इंसान को सचेत करता है कि अगर इस क़ानून पर अमल न हो तो अल्लाह के यहां पकड़ होगी। वह आख़िरत (परलोक) का डर पैदा करता है, जिसकी वजह से क़ानून पर इंसान के लिए अमल करना अपेक्षाकृत आसान हो जाता है। आख़िरत पर उसका विश्वास है तो वह अल्लाह के क़ानून का उल्लंघन नहीं कर सकता।

अधिकार कई प्रकार के बयान किए जाते हैं। एक तो इंसान के व्यक्तिगत

ार निजी अधिकार हैं। इंसान है तो उसे कुछ अधिकार अनिवार्य रूप से चाहिए ा। एक अधिकार तो यह है कि उसे ज़िन्दा रहने दिया जाए। कोई व्यक्ति अगर ुरआन मजीद सरसरी अन्दाज़ में भी पढ़े तो उसे मालूम होगा कि कुरआन ने इस धिकार को कितना महत्व दिया है। वह कहता है कि हर इंसान जो पैदा होता , उसे ज़िन्दा रहने का अधिकार है और जो लोग उसके उस अधिकार को कुचल हे थे, उसने उनके ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द की जो लोग किसी भी कारण–आर्थिक ारण से, लाज–शर्म के ख़्याल से या धार्मिक दृष्टिकोण से इंसान की जान का ादर नहीं कर रहे थे, कुरआन ने उनको चैलेंज किया। उसने कहा कि किसी को कसी की ज़िन्दगी छीनने का अधिकार ही प्राप्त नहीं है। यह बात इतनी स्पष्टता ार इतने विभिन्न तरीक़ों से कही गई है, यूं महसूस होता है जैसे कुरआन इंसान ो ज़िन्दगी का सबसे बड़ा वकील है। क़ानून के विशेषज्ञ कहते हैं कि कोई धिकार निरंकुश या आज़ाद नहीं होता, उसमें अपवाद भी होता है, उसके साथ र्तें भी होती हैं। यह बात भी कुरआन ही ने स्पष्ट किया है कि कोई अधिकार र्ण तथा निरंकुश नहीं है और किसी अधिकार के बारे में आप नहीं कह सकते कि ह बिल्कुल Absolute (पूर्ण तथा निरंकुश) है। कुरआन कहता है कि मानव–प्राण म्मानीय है। लेकिन उस समय वह अपना सम्मान खो देगा और इंसान के जीने ा अधिकार ख़त्म हो जाएगा, जबकि हक़ और इंसाफ़ उसका तक़ाज़ा करते हों। ुरआन में है, "वे इंसान को, जिसे उसने आदरणीय ठहराया है, क़त्ल नहीं करते गर हक़ के साथ।" मतलब यह है कि हक़ और इंसाफ़ का तक़ाज़ा हो तो अल्लाह ा बन्दे इंसानी जान ले सकते हैं। लेकिन अगर हक़ व इंसाफ़ इजाज़त न दे तो कसी भी व्यक्ति को चाहे वह वक़्त का बादशाह और देशों का शासक ही क्यों न ा, यह अधिकार नहीं दिया सकता कि वह किसी को उसके ज़िन्दा रहने के धिकार से वंचित कर दे।

मानव–अधिकार पर जो किताबें लिखी गई हैं उनमें समानता को सभी धिकारों की बुनियाद क़रार दिया गया है। कहा जाता है कि इसी अवधारणा से मस्त अधिकार निकलते हैं कि सारे इंसान समान हैसियत के मालिक हैं। उनमें ौरत–मर्द, बड़े–छोटे, अमीर–ग़रीब, मालिक और मज़दूर सबका दरजा एक है। नमें रंग और नस्ल, देश, क्षेत्र, लिंग और जाति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं ाना चाहिए। आप जानते हैं कि यह आवाज़ जितने ज़ोरदार तरीक़े से इस्लाम ने ठाई और नबी (सल्ल.) ने बयान किया है, उससे ज़ोरदार आवाज़ उठाई नहीं ा सकती। कुरआन की आयत इस सिलसिले में मशहूर है। जुमातुलविदाअ के

अवसर पर अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने जो बेमिसाल ख़ुतबा दिया, जिसे इस्ल
अधिकारों का घोषणा-पत्र कहा जा सकता है, अगर आप उसे मानव-अधिकारों
सबसे पहला घोषणा-पत्र कहें तो अनुचित न होगा। उसमें आप (सल्ल.)
फ़रमाया :

"किसी अरबवासी को किसी ग़ैर अरबवासी पर कोई श्रेष्ठता प्राप्त न
है।''

इसमें सबसे पहले आप (सल्ल.) ने अरबी (अरबवासी) का उल्लेख कि
है। अरबों के ज़रिए इस्लामी इंक़्लाब आया था। अरब उस समय राजसिंहान
थे और शासक थे। उनसे कहा गया कि याद रखो किसी अरब को किसी अ
(ग़ैर अरब) पर श्रेष्ठता नहीं है और किसी गोरे को किसी काले पर श्रेष्ठता प्र
नहीं है। हां, अगर किसी के पास तक़्वा (ईशपरायणता या ईशभय) है तो वह श्रे
है। उसका सम्मान ज़रूर होना चाहिए। सोसाइटी में उसकी इज़्ज़त होनी चाहि
उसकी जगह यह देखना कि कौन गोरा है, कौन काला है, कौन अरबी है, कौ
अजमी है और किसका किस देश से संबंध है और कौन मर्द है और कौन औ
है, नाजाइज़ और ग़ैर इस्लामी रवैया है। यह एलान उस समय किया गया
दुनिया समानता की स्पष्ट अवधारणा नहीं रखती थी।

इंसान का एक मौलिक अधिकार यह माना जाता है कि उसे न्याय औ
इंसाफ़ प्राप्त हो। इस मामले में इस्लाम का स्टैंड बिल्कुल स्पष्ट है। क़ुरआन औ
हदीस में यह बात पूरे ज़ोर और ताक़त के साथ कही गई है कि समाज के प्रत्ये
व्यक्ति के साथ बेलाग न्याय और इंसाफ़ का मामला किया जाए। वह उस स
न्याय और इंसाफ़ की स्थापना के लिए अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के शुभागमन
एक महत्वपूर्ण उद्देश्य ठहराता रहा है :

"निश्चय ही हमने रसूलों को स्पष्ट प्रमाणों के साथ भेजा और उन
हमने किताबें उतारीं और न्याय और इंसाफ़ क़ायम करने के लिए तराज़ू दि
ताकि लोग न्याय और इंसाफ़ पर क़ायम हों।'' (क़ुरआन, ५७ : २५)

इसके बाद कहा कि उन्हें यह अधिकार दिया गया कि वे इसके लिए ता
का इस्तेमाल कर सकते हैं :

"हमने लोहा उतारा है। इसमें लोगों के लिए बड़ी धमकी है। इसमें
का सामान है और लोगों के लिए फ़ायदे भी हैं। यह इसलिए है कि अल्लाह तआ
देखे कि कि कौन अल्लाह के हुक्मों और क़ानूनों को लागू करने के लिए खड़ा हो
है। निश्चय ही अल्लाह शक्तिशाली और प्रभुत्वशाली है।'' (क़ुरआन, ५७ : २

इसका मतलब यह है कि दुनिया में न्याय और इंसाफ़ क़ायम करना और
के लिए ताक़त हासिल करना अल्लाह तआला के पैग़म्बरों का रास्ता है। इस्लाम
माननेवालों के लिए अनिवार्य है कि वे यह रास्ता अपनाएं।

समानता एवं न्याय और इंसाफ़ की एक अनिवार्य मांग और अपेक्षा यह
कि समाज में क़ानून को वर्चस्व प्राप्त हो, ताकि प्रत्येक व्यक्ति इस इत्मीनान
साथ अपने कर्तव्यों को पूरा कर सके कि क़ानून उसकी पीठ पर है। इसलिए
के साथ कोई अन्याय या इसके अधिकारों का हनन नहीं होगा। यह बात इस
ह कही जाती है जैसे इससे पहले दुनिया में इसकी अवधारणा नहीं थी। इस्लाम
यह बात बड़ी स्पष्टता के साथ कही है कि क़ानून के सामने सब बराबर हैं।
के मामले में किसी को दम मारने की इजाज़त न होगी। मशहूर वाक़िया है, जो
ारी और हदीस की दूसरी किताबों में मौजूद है कि बनू मख़्ज़ूम की एक औरत
चोरी की तो नबी (सल्ल.) से निवेदन किया गया कि उस औरत ने चोरी की
लेकिन शरीफ़ घराने की है। उसका हाथ न काटा जाए। कोई और सज़ा दे दी
ए। नबी (सल्ल.) को यह बात बहुत बुरी लगी। आप (सल्ल.) ने कहा कि क़ौमें
ी तरह तबाह हुई हैं कि उनमें जो सत्ताधारी और सज्जन समझे जाते थे,
होंने अगर कोई ग़लत काम किया तो उनको सज़ा नहीं दी गई और जो कमज़ोर
उनको सज़ा दी गई। फिर वह ऐतिहासिक वाक्य बोले, जो शायद पैग़म्बर ही
मुंह से निकल सकता है। आप (सल्ल.) ने कहा कि मुहम्मद की बेटी फ़ातमा
चोरी करती तो आज मैं उसका हाथ काट देता। ज़ाहिर है कि इससे श्रेष्ठ अवध
णा प्रस्तुत नहीं की जा सकती कि क़ानून हो तो सबके लिए हो—बड़े के लिए भी,
टे के लिए भी, मर्द के लिए भी, औरत के लिए भी। इसमें किसी को कोई छूट
ीं मिल सकती। यह इतना साफ़ और स्पष्ट अवधारणा है कि इससे बेहतर
धारणा दुनिया में कहीं नहीं है।

कहा जाता है कि इंसाफ़ के लिए ज़रूरी है कि अपराध अदालत से सिद्ध
। इसके बिना सज़ा न दी जाए। यह अवधारणा भी शायद इस्लाम ही से ली गई
हज़रत उमर (रज़ि.) कहते हैं, "क़सम ख़ुदा की, किसी शख़्स को क़ैद नहीं
ा जाएगा जब तक कि न्यायप्रिय लोग उसके अपराधी होने की गवाही न दें।"

इस्लाम के निकट यह राज्य की ज़िम्मेदारी है कि वह देखे कि क़ानून
ीं तोड़ा तो नहीं जा रहा है। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) का कथन है, "इमाम
चरवाहा है।" जिस तरह एक चरवाहा बकरियों के रेवड़ का ज़िम्मेदार होता
उसी तरह इमाम भी अपनी रैयत का ज़िम्मेदार है। उसकी हैसियत किसी

बादशाह की नहीं है, बल्कि चरवाहे की है, जो यह देखता रहता है कि कहीं वि
पर ज़ुल्म तो नहीं हो रहा है। राज्य इस बात की निगरानी करता रहेगा कि वि
का अधिकार-हनन न होने पाए।

एक बात यह कही जाती है कि इंसान को अपनी बुनियादी ज़रूरतें
करने का अधिकार मिलना चाहिए। इस्लाम का दृष्टिकोण इस मामले में बिल
स्पष्ट ही नहीं, बहुत व्यापक भी है। वह कहता है कि पूरी ज़मीन में इंसानों
फ़ायदे की चीज़ें रखी गई हैं :

"ज़मीन में जीविका के साधन रख दिए गए हैं। उसे हासिल करने
हरेक को हक़ है।" एक जगह कहा गया, "ज़मीन के हर कोने में चलो-फि
उसके किनारे-किनारे चलते जाओ और अल्लाह ने जो आजीविका रखी है,
हासिल करो।" इस्लाम के निकट आजीविका प्राप्त करने में कोई अवैध तरी
अपनाना क़ानूनन जुर्म है। इस्लाम इंसान को यथोचित प्रयास करने की आज़
उपलब्ध कराने के साथ इस बात को भी यक़ीनी बनाता है कि इंसान को अ
भोजन मिले। वह गन्दा भोजन और सड़ी-गली चीज़ें खाने पर मजबूर हो जा
कुरआन कहता है कि अल्लाह का इंसान पर यह एहसान है कि उसे पाक चीज़ें
गई हैं। इंसान इसलिए नहीं है कि वह गन्दी चीज़ें और मिलावट की चीज़ें खा
वह कहता है कि उसे पवित्र और पाक-साफ़ भोजन मिलना चाहिए। यह उस
अधिकार है। उसके नज़दीक वस्त्र भी इंसान की एक फ़ितरी ज़रूरत है। आ
(अलैहि.) नंगे हो गए तो उन्होंने कहा कि ऐ अल्लाह, मैं नंगा हो गया हूं। व
भी नहीं मिला तो पेड़ के पत्तों ही से ख़ुद को छुपाने लगे। इस्लाम की रूह
इंसान की यह फ़ितरी ज़रूर भी अनिवार्य रूप से पूरी होनी चाहिए। इस तरह
उचित स्थान मिलना चाहिए और सुविधा के अनुसार उसके पास सेवक भी हो
चाहिए। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने कहा कि जिस व्यक्ति को हम सरकारी
पर लेंगे, अगर उसकी शादी नहीं हुई है तो उसको यह अधिकार है कि सरक
ख़ज़ाने से शादी करे। अपने लिए कपड़े का इन्तिज़ाम करे। वह अपने लिए मक
भी बना सकता है और सवारी भी रख सकता है। इससे अधिक अधिकार उस
नहीं होगा। इस्लामी विद्वानों ने लिखा है कि उसका संबंध इस बात से है कि र
की आर्थिक स्थिति क्या है? बहरहाल, इस्लामी राज्य यह ज़िम्मेदारी लेता है
कोई व्यक्ति भूखा-प्यासा न रहे और कोई व्यक्ति यह न समझे कि अब मेरा क
पूछनेवाला नहीं रहा। सही हदीसों में आया है कि नबी (सल्ल.) ने कहा कि व
व्यक्ति इस हाल में दुनिया से जा रहा है कि उसने माल छोड़ा है तो उसके वा

का हक़ है। आप (सल्ल.) ने कहा कि कोई बाल-बच्चा छोड़कर जाता है, माल छोड़कर नहीं जाता है तो उसका अभिभावक या वली मैं हूंगा और उसकी देख-भाल मेरे ज़िम्मे है। इसके सिलसिले में उलेमा ने लिखा है कि यह राज्य की ज़िम्मेदारी है कि कोई व्यक्ति और कोई बच्च भूखा न रहे। उसकी ज़रूतें पूरी होने से न रह जाएं। ख़ानदान में उसका कोई देख-भाल करनेवाला नहीं है, तो राज्य उसकी ज़रूरतें पूरी करने का ज़िम्मेदार होगा। इसके साथ यह भी बताया गया कि इंसान दुनिया को अभीष्ट (मक़सूद) न बनाए।

अधिकारों के संदर्भ में सामाजिक और आर्थिक अधिकारों का बहुत महत्व है। ये उसे अनिवार्य रूप से मिलने चाहिएं। सामाजिक और सामुदायिक अधिकारों की अवधारणा यह है कि आदमी समाज और समुदाय में सक्रिय भूमिका (Active Part) निभा सके। यह उसका अधिकार है कि उसे बेकार बनाकर न रख दिया जाए। उसपर ऐसी पाबन्दियां न हों कि वह कुछ न कर सके। इस्लाम में इसकी अवधारणा बिल्कुल स्पष्ट है। इस्लाम विचार और व्यवहार की आज़ादी को मानता है। जो लोग सोच-विचार नहीं करते उनके बारे में वह कहता है कि उन्हें क्या हो गया है कि जानवरों की तरह बिना सोचे-समझे ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं। वे दुनिया के आरंभ और अन्त पर विचार करें और समझें। व्यवहार की भी वह पूरी आज़ादी देता है, सिर्फ़ इस बात की पाबन्दी है कि इंसान कोई ऐसा क़दम न उठाए जिससे बिगाड़ फैले और समाज को हानि पहुंचे। पैग़म्बरों के आह्वान का सबसे पहला आधार एकेश्वरवाद (तौहीद) होता था अर्थात यह कि एकमात्र अल्लाह की इबादत करो और फिर वे कहते थे कि अल्लाह ने अपने क़ानून के ज़रिए ज़मीन में सुधार किया है। इसमें बिगाड़ न पैदा करो। अल्लाह ने अपने क़ानून को भलाई और सुधार का ज़रिया बनाया है। इसकी मौजूदगी में बिगाड़ पैदा न करो।

अभिव्यक्ति की आज़ादी इंसान का एक बुनियादी हक़ है। इस्लाम ने इसे यह अधिकार दिया है। उसके नज़दीक इंसान के उस हक़ पर अनुचित पाबन्दी नहीं लगनी चाहिए। लेकिन वह इस बात का पाबन्द बनाता है कि अभिव्यक्ति की आज़ादी के नाम पर वह बेहयाई न फैलाए, किसी का दिल न दुखाए, किसी का मज़ाक़ न उड़ाए, किसी की इज़्ज़त और अस्मिता से न खेले और देश और राज्य को ख़तरे में न डाले और उसके ख़िलाफ़ साज़िश न करे। इन शर्तों के साथ विचार प्रकट करने की आज़ादी है और दुनिया का कोई क़ानून ऐसा नहीं है, जो उस पर इस तरह की पाबन्दी न लगाता हो। यह और बात है कि आज बहुत सारी चीज़ों की गिनती बेहयाई में नहीं है। उसकी इजाज़त दे दी गई है।

यह भी इंसान का एक अधिकार समझा जाता है कि उसे घर-परिवार बसाने की इजाज़त हो, क्योंकि परिवार इंसान की फ़ितरी ज़रूरत है। इस मामले में इस्लाम की शिक्षाएं इतनी स्पष्ट हैं कि इसके स्पष्टीकरण की कुछ भी ज़रूरत नहीं है। वह कहता है कि परिवार ख़ुदा का उपहार और इनाम है। आदमी के बच्चों और सन्तानों का फैलना इस बात के लिए विपत्ति या झंझट नहीं, बल्कि सौभाग्य का कारण है। परिवार के सिलसिले में इससे बड़ी बात और क्या कही जा सकती है? फिर यह कि इसने परिवार का पूरा सिस्टम दिया है और इसे बनाए रखने की ताकीद की है।

तन्हाई और एकान्त (Privacy) को भी इंसान का एक अधिकार स्वीकार किया गया है। कुरआन ने न सिर्फ़ यह अधिकार दिया है, बल्कि इसकी ताकीद की है कि किसी की निजी ज़िन्दगी में हस्तक्षेप न किया जाए, यहां तक कि हुकूमत को भी इसमें हस्तक्षेप का अधिकार नहीं है।

यह भी इंसान का मौलिक अधिकार स्वीकार किया जाता है और इस्लाम में यह अधिकार पहले से मौजूद है कि इंसान को देश और जाति की सेवा का और आलोचना और परिस्थिति में सुधार का अवसर मिलना चाहिए। इस्लाम ने इंसान को यह अधिकार प्रदान किया है और बताया है कि जो इंसान देश की सेवा करता है, वह बेहतरीन और आदरणीय इंसान है। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने कहा कि ताक़तवर मुसलमान कमज़ोर मुसलमान से बेहतर है, क्योंकि ताक़तवर मुसलमान इंसानों की, समाज और समुदाय की सेवा करेगा। जो कमज़ोर है वह क्या सेवा कर सकेगा। एक अवसर पर आप (सल्ल.) ने कहा कि वह मुसलमान जो लोगों से मिलता-जुलता है, उनकी तकलीफ़ों को बरदाश्त करता है, वह बेहतर है उससे जो न किसी से कि मिलता है और न तकलीफें बरदाश्त करता है। कुरआन कहता है कि यह इंसान का हक़ है कि वह सोसाइटी के सुधार, भलाई और कल्याण के लिए काम करे। कपटाचारियों से कहा गया कि तुम्हारी कानाफूसियां तुम्हारे लिए फ़ायदेमन्द नहीं हैं, क्योंकि ये एक तरह की साज़िशें हैं। हां, अगर तुम लोगों की भलाई करने और भलाइयों को फैलाने और बुराइयों को रोकने की बात करो तो यह तुम्हारे हक़ में बेहतर होगा और अल्लाह बड़ा प्रतिदान प्रदान करेगा।

(कुरआन, 4 : 114)

एक और चीज़ जिसकी आज बड़ी चर्चा है, वह है सुरक्षा। इस बात को तो दुनिया स्वीकार करती है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सुरक्षा का अधिकार है। कोई व्यक्ति किसी की जान लेना चाहे, किसी की इज़्ज़त और आबरू पर हमला

करे या किसी का माल छीनना चाहे, उसकी जायदाद पर क़ब्ज़ा करना चाहे, उसके घर को आग लगाना और बीवी-बच्चों पर हमला करना चाहे, तो ज़ाहिर है वह ख़ामोश नहीं बैठेगा। उसकी सुरक्षा करेगा, लेकिन इसमें असावधानी दोनों तरफ़ से होती है। कभी तो यह होता है कि सुरक्षा के नाम पर आदमी उन बातों का ख़्याल नहीं रखता, जिनका ख़्याल रखना चाहिए और कभी यह होता है कि आतंकवाद और हिंसा के नाम पर आदमी को सुरक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। इस्लाम में सुरक्षा की बहुत स्पष्ट अवधारणा मौजूद है कि सुरक्षा कब होना चाहिए और कैसे होना चाहिए, वह किन परिस्थितियों में जाइज़ है और किस सीमा तक जाइज़ है और कहां सीमाओं का उल्लंघन होता है? ये सभी चीज़ें कुरआन और हदीस में मौजूद हैं और हमारे उलेमा और फुक़हा ने भी बड़े विस्तार से इस पर लिखा है। सुरक्षा इंसान का मौलिक अधिकार है, लेकिन सुरक्षा के नाम पर अगर अत्याचार हो तो यह ग़लत है। यह व्यक्तिगत सुरक्षा की बात है। देश और देश के बीच जो मुक़ाबला होता है, उसकी यहां बहस नहीं है।

किसी लोकतांत्रिक संविधान की एक अनिवार्य विशेषता यह समझी जाती है कि उसमें अल्पसंख्यकों और कमज़ोर वर्गों के लिए सुरक्षा उपलब्ध कराया जाए, उन्हें दूसरों के समान अधिकार दिए जाएं, उनका अधिकार-हनन न होने दिया जाए और उन्हें ज़ुल्म-ज़्यादती से बचाने का उपाय किया जाए।

इस्लाम के आने से पहले कमज़ोरों के अधिकार अरब में ही नहीं दुनिया में किसी भी जगह सुरक्षित नहीं थे। उनका बुरी तरह शोषण हो रहा था और उनपर ज़ुल्म-ज़्यादती आख़िरी हद को पहुंच चुकी थी। इस्लाम ने शुरू से उनके हक़ में आवाज़ उठाई और उनपर जो ज़ुल्म-ज़्यादती हो रही थी उसपर कठोर दंड की धमकी दी और दुनिया और आख़िरत (लोक-परलोक) में उसके बुरे अंजाम से ख़बरदार किया। उसने औरतों के, अधीनस्थों और शासितों के, बेबसों, बूढ़ों और कमज़ोरों के अधिकार सिर्फ़ बयान ही नहीं किए, बल्कि व्यावहारिक रूप से उपलब्ध किए और समुदाय तथा समाज को उनके साथ बेहतर से बेहतर आचरण की प्रेरणा दी और सहानुभूति और सहायता की भावना पैदा की।

मानव-अधिकारों के ध्वजावाहक धार्मिक स्वतंत्रता को भी इंसान का एक अधिकार ठहराते हैं। इस्लाम ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में इसका एलान किया है। कुरआन कहता है कि अगर अल्लाह चाहता तो सभी लोगों को अपने धर्म का पाबन्द बना देता, कोई उससे बग़ावत न करता। लेकिन अल्लाह ने धर्म के मामले में उसको आज़ादी दी है और उसकी यह आज़ादी बाक़ी रहनी चाहिए। इसी में

उसकी परीक्षा है। हुज़ूर (सल्ल.) से कहा गया कि आप सत्य के इंकारियों के पी
क्यों पड़े हुए हैं अर्थात् आपकी ज़िम्मेदारी नहीं है कि उन्हें अनिवार्य रूप से स
रास्ते पर ले आएं, बल्कि यह अल्लाह का काम है। वह जिसे चाहता है, हिदा
देता है। यह भी बताया कि धर्म के सिलसिले में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं
हमारा काम यह स्पष्ट करना था कि हिदायत क्या है, गुमराही क्या। वह कर वि
गया। अब यह आदमी का अधिकार है। जिसका जी चाहे ईमान लाए और जिस
जी चाहे इंकार कर दे। कुरआन ने कहा है कि धर्म पर बातचीत भी हो सक
है, लेकिन यह बातचीत शिष्टाचार की सीमा के अन्दर होनी चाहिए। हिदायत
कि धर्म पर बातचीत हो तो सलीक़े और तहज़ीब से हो। इसके लिए ग़लत अ
अशिष्ट ढंग न अपनाया जाए। हमारे उलेमा ने यहां तक लिखा है कि अगर व
ग़ैर मुस्लिम, इस्लामी राज्य में खुले आम यह कहता है कि मैं कुरआन को अल्ल
की किताब नहीं मानता, मुहम्मद (सल्ल.) को अल्लाह का रसूल नहीं स्वीक
करता तो भी इस्लामी हुकूमत उसके ख़िलाफ़ कोई क़दम नहीं उठाएगा। हां, अ
वह बदज़बानी पर उतर आए तो उसके ख़िलाफ़ कार्रवाई की जाएगी। अल्लाह
रसूल (सल्ल.) की शान में या हज़रत मूसा (अलैहि.), हज़रत ईसा (अलैहि.)
किसी भी पैग़म्बर की शान में गुस्ताख़ी एक दंडनीय अपराध है। ऐसा करने
इस्लामी राष्ट्र क़त्ल की सज़ा तक दे सकता है। इसी तरह किसी भी धर्म
संस्थापक या उसकी सम्मानीय विभूतियों का अनादर और अपमान और उन
संबंध में अपशब्द दंडनीय होगा और क़ानून के अनुसार उस पर दंड दिया जाएग

सच्चाई यह है कि अधिकार किसी व्यक्ति या वर्ग को अनिवार्यतः मिल
चाहिएं। इस्लाम वे सभी अधिकार प्रदान करता है और इंसान की स्वाभावि
अपेक्षाओं (फ़ितरी तक़ाज़ों) की बेहतर ढंग से पूर्ति करता है। सबसे बड़ी बात
है कि वह दुनिया ही की कामयाबी की नहीं, आख़िरत की कामयाबी और भलाई
भी गॉरंटी देता है। इसके होते हुए दोनों लोकों (लोक और परलोक) की सफल
के लिए किसी संविधान और किसी जीवन-व्यवस्था की ज़रूरत ही बाक़ी न
रहती।